Volume-08
Issue-02
February-2021

ISSN: 2349-7637 (Online)
RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
https://rhimrj.co.in/ [Peer-Reviewed Journal]

सूरदास के काव्य का सामाजिक पक्ष

डॉ धनंजय कुमार दुबे
[Corresponding Email: dubeydhananjay05@gmail.com]

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन एक धार्मिक आंदोलन के होने के बावजूद अपनी प्रगतिशील सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक भूमिका के लिए हिन्दी साहित्य में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने वाला काव्य आंदोलन है. मध्यकालीन समाज मूलत: एक सामंती था. गैरबराबरी, शोषण, अंधविश्वास, धर्मांधता, कट्टरता, जातिवाद, ऊंच-नीच और भेदभाव इसकी मूल संरचनाओं में शामिल थे. मध्यकालीन समाज में स्त्रियों को मानवीय अधिकारों से दूर सिर्फ पुरुषों के सेवा-टहल और मनोरंजन या उसकी वंश वृद्धि का साधन मात्र समझा जाता था. यही नहीं समाज का मेहनतकश तबका अभाव, अपमान और दरिद्रता का जीवन जीने को मजबूर था. ऊपर से तुर्रा यह कि यह सब पिछले जन्मों के कर्म का फल था, जिसे बदला ही नहीं जा सकता था. ऐसे हृदयहीन समाज में पराधीनता, गैबराबरी और कट्टरता के विरुद्ध भक्ति आंदोलन परिवर्तन की एक उम्मीद लेकर सामने आया. इस परिवर्तन की लहर भक्ति के आवरण में ही क्यों न प्रकट हुई हो, इसने पिछड़े, वंचितों और स्त्रियों को उम्मीद की राह दिखाई. मध्यकालीन सामंती व्यवस्था की क्रूरता, दमन और निरंकुशता के विरुद्ध सभी भक्त कवि संघर्ष करते हैं और प्रेम, बराबरी तथा भाईचारे का संदेश देते हैं. लिंग, जाति, धर्म, वर्ण, कुल, जन्म आधारित भेदभावकारी मान्यताओं पर सीधा प्रहार करते हैं और एक समरस समाज की प्रस्तावना सामने रखते हैं. **1**

प्रेम भक्तिकालीन कविता के केंद्र में है. यह एकसाथ अपने आराध्य से सीधा संपर्क जोड़ने का साधन है तो दूसरी ओर सभी तरह के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक भेदभाव को दूर कर सबको समभाव से देखने का साधन भी है. यह प्रेम सभी तरह के भेदों का ही अंत ही नहीं करता बल्कि भेदभाव की मानसिकता को भी चुनौती देता है. भक्त कवियों का प्रेम, विलासिता पर आधारित सोच और आचरण के सामने भी एक चुनौती पेश करता है, उसके समक्ष सोच और विचार की प्रस्तावना करता है. यहाँ प्रेम बैकुंठ की तरह है और सांसरिक चुनौतियों से निपटने का साधन भी. सूरदास की कविता भी इस दृष्टि बहूमूल्य है.**2** "सूर की कविता अपने समय के समाज के पीछे चलने या उसकी आलोचना करने के स्थान पर उस सामंती समाज की व्यवस्थाओं, संस्थाओं और रूढ़ियों के दमनकारी प्रभावों का निषेध करती हुई एक ऐसे समाज की रचना करती है जिसमें लोग और शास्त्र के बंधनों से स्वतंत्र मानवीय भावों और मानवीय संबंधों का सहज स्वाभाविक विकास संभव हुआ है. उनकी कल्पना के वृंदावन में वात्सल्य की चरम सहजता और प्रेम की परम स्वतंत्रता का अनुभव सामंती सामाजिकता के आतंक से एकदम मुक्त है." **3**

सूरदास को प्रेम और वात्सल्य का कवि माना जाता रहा है. लेकिन यह प्रेम एकांतिक नहीं है बल्कि पूरी चेतना सम्पन्न और अपने समय की समस्याओं के माकूल जवाब की तरह है. सूरदास का प्रेम मध्यकालीन सामंती जीवन और आचरण का एक स्वस्थ और सार्थक विकल्प भी है. यह प्रेम हर तरह की समस्या के समाधान के आदर्श समाधान का मुख्य साधन है. कृष्ण के प्रति सूरदास की भक्ति प्रेम की पराकाष्ठा है, तो भक्तों को भगवान के साथ बराबरी के धरातल पर खड़ा करने का साधन भी है. यह प्रेम जीवनादर्शों और भक्ति का वह रूप है जहां जाति-पाँति, कुल, लिंग, वर्ण और धर्म का भेद पूरी तरह मिट जाता है.

स्याम गरीबनि हूँ के ग्राहक।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबहक।
कहा बिदुर की जाति-पांति, कुल प्रेम-प्रीति के लाहक।
कहाँ पांडव कैं घर ठकुराई? अरजुन के रथ-बाहक।
कहा सुदामा कें धन हौ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक।

मध्यकालीन सामंती समाज में प्रभुत्वशाली तबके के लिए विलासिता के लिए तो भरपूर जगह था परंतु प्रेम यहाँ सबसे मुश्किल और वर्ज्य विषय था, तो सिर्फ इसलिए कि वह समानता को प्रस्तावित करता है. समानता की कोई भी अवधारणा प्रभु वर्ग को बर्दाश्त नहीं हो सकती थी. पतनोन्मुख सामंती व्यवस्था में साधारण लोगों के लिए प्रेम अपराध से कम न था. खासकर सामान्य लोगों और स्त्रियों के लिए तो प्रेम किसी दृष्टि से ग्रहणीय तो क्या क्षम्य भी नहीं था. ऐसे में सूरदास ने प्रेम को केंद्रीय तत्व के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए स्त्री-पुरुष समानता तथा स्त्री स्वतंत्र्य को महत्व दिया, और इसके माध्यम से एक आदर्श समाज की प्रस्तावना की. स्त्रियों को जो बराबरी, स्वाधीनता और सम्मान सूरदास के काव्य में मिलता है, पूरे भक्तिकाव्य में कहीं नहीं मिलता. सूर की गोपियाँ कृष्ण से नि:शंक भाव से प्रेम करती हैं. यही नहीं माता के रूप कृष्ण को यशोदा को सम्मान सूर के यहाँ मिलता है वह भी अपूर्व है. सूरदास इस प्रस्तावना को पूरी तरह व्यावहारिकता के धरातल पर उतारने का भरपूर उपक्रम कराते हैं. वृंदावन के जिस प्राकृतिक सुरम्य वातावरण में साधारण हास-परिहास के बीच कृष्ण एवं गोपियों के प्रेम का उदय होता है, वह स्वाभाविक है. गोपियों और कृष्ण के बीच में प्रेम बराबरी का है. तभी तो गोपियाँ न सिर्फ कृष्ण पर अपना अधिकार जताती हैं बल्कि शिकायत भी करती हैं.

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नंदलालहिं, नाना भांति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।

कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ौ ह्वै आवति।
अति अधीन सुजान कनौडे, गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौढि अधर सज्जा कर, पल्लव पलुटावति।
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तै सीस डुलावति।

यह प्रेम तात्कालीन विलासिता और भोगवादी मानसिकता वाले सामंती मूल्यों का निषेध करता है. प्रेम में उदात्त भावों की स्थापना करता है. स्त्रियों को प्रेम में चयन करने और निर्णय लेने का अधिकार देता है, जो तत्कालीन सामंती समाज में स्वप्न में भी संभव नहीं. दरबारों और हरम को प्रतिष्ठा का आधार मानने वाली सोच के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती पेश करता है. इस प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं.

अँखियां हरि दरसन की प्यासी।
देख्यौ चाहतिं कमलनैन कौ, निसि-दिन रहतिं उदासी।

सूरदास का काव्य मध्यकालीन समाज में नारी की स्थिति, उस पर आरोपित वर्जनाओं, विविध बंधनों और नियंत्रण से मुक्ति का स्वर देता है. कृष्ण की मुरली को सुनकर गोपियां जब घर की चौखट से निकलती हैं तो वे उस मध्यकालीन मानसिकता को भी सीधी चुनौती देती हैं जो नारी को प्रेम का और चयन का अधिकार देने से मना करता है. नारी अधिकार का यह भाव सूरदास और मीरा ने जनसामान्य को दिया. यहां आकर कुलीनता और लोक मर्यादा की पारंपरिक सीमाएं टूट जाती हैं. सूर की ये स्त्रियाँ अब सामंती समाज की जकड़न में कैद स्त्रियाँ नहीं बल्कि व्यक्ति-चेतना से सम्पन्न एक स्वतंत्र इकाई बन जाती हैं. सूर की ये गोपियाँ, पितृसत्तात्मक सामंती समाज-व्यवस्था की स्त्रियाँ नहीं हैं. इस तरह सूर का यह काव्य स्त्रियों को अधीन बनाने वाली युक्तियों का निषेध करता है.4 सूरदास की प्रशंसा करते हुए लोहिया कहते हैं स्त्रियां दुनिया में कहीं पुरुषों के बराबर हुई है तो वृंदावन में और कान्हा के संग. लोहिया के अनुसार भारतीय मिथक में कृष्ण वो चरित्र हैं जहां स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है. **5**

सूर की कविता भक्तिपरक होते हुए भी युगबोध से संपन्न है. उन्होने असमानता, भेदभाव और शोषण से भरे समाज में, समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग को चुनौती देते हुए उनकी पद-प्रतिष्ठा और ताकत को अनदेखा करते हुए नायक के उच्च कुलोत्पन्न होने की धारणा को अस्वीकार किया और एक साधारण कुल के एक साधारण से ग्वाले श्रीकृष्ण को आराध्य के रूप में प्रतिष्ठापित किया. इस तरह सूरदास अपने समाज में मौजूद वर्ण व्यवस्था और जातिगत श्रेष्ठता के दंभ को झटके से नकार देते हैं-

जातिपांति पूछै नहीं कोई, श्रीपति के दरबार

सूरदास के कृष्ण ब्रह्म तो हैं लेकिन लोक जुड़ाव इतना कि अपने भक्तों के बीच में रहते हैं, गोकुल की गलियों में विचरण करते हैं और सामान्य बच्चों और नागरिकों कि तरह रहते हैं, उनके साथ खाना खाते हैं, शरारतें करते हैं तथा हर विपदा में उनका साथ देते हैं, उनसे उन्हें बाहर निकलते हैं. यहां कृष्ण के मित्रों, उनके उपासकों में न जाति का भेद है और ना ही हैसियत का. ये कृष्ण अपने भक्तों से सखा-सहेलियों की तरह व्यवहार करते हैं, उनसे प्रेम करते हैं और विपत्ति के समय उनकी अनेकानेक रूपों में रक्षा भी करते हैं. लोक-रंजन और लोक-रक्षण का यह अद्भुत रूप सूरदास के आराध्य कृष्ण की विशेषता है. यहां भक्ति मार्ग का अनुयायी होकर कथित नीच भी श्रेष्ठ जीवन जीता है जबकि भक्ति रहित होकर ब्राह्मण भी निरर्थक जीवन जीता है. नगरीय सभ्यता की चमक-दमक और वैभव आकर्षित करती है, परंतु इनकी वणिक वृत्ति तथा अपनी जड़ों से दूर होकर निष्कलुष संस्कारों के धूमिल होने की व्यथा भी यहां दिखती है. सहज जीवन जब आडंबरों से लद जाता है तो करीबी संबंधों की जोड़ भी मानो खुलने लगती है. समस्त वैभव के बीच सहज जीवन और उसका प्रेम बारंबार खींचता है, व्यथित करता है. कृष्ण कहते हैं-

उधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ,
वृंदावन गोकुल वन उपवन, सघन कुंज की छाहीं
प्रात समय माता जसुमति अरु, नंद देखि सुख पावत
माखन रोटी दुहयौ सजायौ, अति हित साथ खबावत

सगुण भक्ति काव्य के कृष्णमार्गी धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं सूरदास. 'सूर सूर तुलसी शशि' जैसी प्रशस्तियों से सूरदास के महत्व का पता लगता है. इनके समकक्ष सिर्फ तुलसीदास जैसी प्रतिभा को रखना स्वत: सूरदास के बारे में बहुत कुछ कह देता है. सूरदास मूलता भक्त हैं. भक्ति के निवेदन के क्रम में कविता स्वत: बनती जाती है. विनय और आत्मनिवेदन से शुरू होकर विभिन्न लीलाओं के गान से श्रीकृष्ण के द्वारिका गमन तक सूरदास ने कृष्ण की भक्ति के जो चित्र खींचे हैं वे अद्भुत हैं. सूर आरंभ से ही भगवद भक्ति में लीन रहा करते थे. 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार आचार्य वल्लभाचार्य की ब्रजयात्रा के दौरान गौ-घाट पर ठहरे थे, जहां सूरदास ने उनसे मुलाकात की और उनके समक्ष 'हरि हौं सब पतितन को टीको' जैसे पद गाए. तब प्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें दीक्षा दी व भगवतलीला वर्णन करने को कहा, तभी से सूर ने कृष्ण की मनोरम लीला का गान शुरू कर दिया. सूरदास की सच्ची भक्ति और पदरचना की निपुणता देखकर वल्लभाचार्य ने उन्हें अपने श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी.**6**

सूरदास प्रथमत: भक्त हैं. अपने गुरु के परामर्श के अनुरूप इन्होंने श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण लीला संबंधित पदों की रचना आरंभ की. सूरदास की भक्ति भावना का मेरुदंड है- पुष्टिमार्ग का सिद्धांत भगवदनुग्रह. इसी को आधार मानकर उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की पद्धतियों से लीला गान किया. पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व में विनय के पदों की रचना किया करते थे. इस तरह के उनके पदों में सगुण के साथ-साथ निर्गुण साधना पद्धति का संकेत मिलता है:

अविगत-गति कछु कहत न आवै
ज्यों गूंगै मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै

वल्लभाचार्य के अनुयायी होने के पश्चात सूर ने विनय भाव और दास्य भक्ति को छोड़कर वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति को अपनाया. भगवत की लीला का गान करने वाले सूर को 'पुष्टिमार्ग का जहाज' भी कहा जाता है. वल्लभाचार्य का दर्शन के क्षेत्र में जो सिद्धांत शुद्धाद्वैत कहलाता है, भक्ति के क्षेत्र में उसका साधन मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है. इस पुष्टिमार्ग की यह विशेषता थी यह सबके लिए था, कोई

भी मनुष्य इस मार्ग का अनुयाई हो सकता था बिना किसी भेदभाव के. यह भावना ही भक्ति आंदोलन का मूलाधार थी.

सूरदास ने भगवत लीला का गान करते हुए नवधा भक्ति के विविध रूपों श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वंदन, अर्चन इत्यादि का वर्णन किया है. सूर की प्रेम स्वरूपा भक्ति वस्तुतः सख्य व माधुर्य भाव की भक्ति है. इस तरह की भक्ति में आराधक-आराध्य में अत्यंत आत्मीयता और निकटता का भाव होता है. इस निकटता के बावजूद सूरदास यह बताना नहीं भूलते यशोदा-नंद को कृष्ण का जो साहचर्य प्राप्त है वह मुनियों और देवताओं को भी सहज प्राप्त नहीं है, अर्थात कृष्ण विशिष्ट हैं, ब्रह्म हैं.

जाकौ सिव-विरंचि-सनकादिक मुनिजन ध्यान ना पावै
सूरदास जसुमति ता सुत-हित मन अभिलाषा बढ़ावै

राधा और गोपियों का कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ अनुराग तो सूरसागर की एक मजबूत कड़ी है-

उधो मन न भए दस-बीस
एक हुतो सो गए स्याम संग, को अवराधै ईश

या फिर

इहिं उर माखन चोर गड़े।
अब कैसे निकसत सुनि उधौ, तिरछै हौ जु अड़े

सूरदास ने प्रेम भक्ति की महत्ता के बारे में लिखा है-

प्रेम-भक्ति बिनु मुक्ति ना होय नाथ, कृपा कर दीजै सोई

हर प्रकार की सांसारिकता से मुक्त होकर कृष्ण के शरणागत की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है. यह भक्त परिवार, समाज, मर्यादा, लोक, वेद आदि बंधनों से मुक्त केवल कृष्ण का भजन, स्मरण करता है. यह ठीक है कि सूर भक्त हैं और भक्ति वैयक्तिक साधना है, लेकिन भक्त कवियों की यह साधना इतनी निष्ठा, ईमानदारी के साथ है जिसमें जाति-पांति, कुल मर्यादा, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष इत्यादि का भेद निरर्थक हो जाता है. सादगी, सत्चरित्रता, मर्यादा, संयम के साथ चारित्रिक दृढ़ता और निडरता ने इस भक्ति को धर्म मात्र का विषय नहीं रहने दिया. यह साधना सामाजिक-सांस्कृतिक एकता और समानता की साधना भी बन जाती है. फलत: अपने समय की पतनोन्मुखी सामंती शक्तियों और व्यवस्था से टकराती है.

सूरदास अपने समाज के आमजन से गहरे जुड़े हुए थे. यह समय खेती-किसानी का था जिसका पशुपालन से सीधा संबंध था. स्वयं कृष्ण एवं उनका पूरा कुनबा गोचारण से जुड़ा था. "सूर के काव्य में गोचारण का 'मनोरम हृदय' तो है ही, पशु-प्रकृति का गहरा ज्ञान भी है. गायों के रूप, रंग और उनके स्वभाव का न सिर्फ ज्ञान बल्कि विशद वर्णन भी सूरसागर में भरा पड़ा है. 'माधौ जू, यह मेरी एक गाई' जैसे पद में हरही गाय के स्वभाव का वर्णन है तो 'अपनी-अपनी गाई ग्वाल सब आनि करो इक ढ़ौरी' में गायों के नाम और स्वभाव का बड़ा ही जीवंत वर्णन है."**7** मध्यकालीन गोचारण संस्कृति का जो रूप सूर के काव्य में आता है वह अनुपम है. यही नहीं सूरदास के काव्य में ढेर सारे ऐसे संकेत मिलते हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि सूर को खेती-किसानी की अच्छी जानकारी थी. इस संदर्भ में सूर के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होने सामंती-व्यवस्था के संदर्भों के साथ किसानी जीवन का चित्रण किया है. किसानी जीवन की चुनौतियों और यातनाओं के साथ किसानों का चित्रण सूर की अप्रतिम विशेषता है-

सबैं क्रूर मोसों ऋण चाहत, कहौ, कहा तिन दीजै।
बिना दियै दुख देत दयानिधि, कहौ कौन विधि कीजै। **8**

सूरदास के काव्य में लोकजीवन और लोकजुड़ाव के संदर्भ भरे पड़े हैं. इनके काव्य से आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक संकेतों को निकाल दिया जाय तो भी विशुद्ध लौकीक और मानवीय अनुभूतियों की कविता के रूप में यह लोकजीवन के बहुआयामी सौंदर्य का अक्षय कोश है. 9

सूरदास के वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर्य बंद आंखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं."**10**

सुत मुख देखि जसोदा फूली।
हरषति देखि दूधि की दंतियाँ, प्रेममगन तन की सुधि भूली।

सूर का वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है. बालमन की अभिरुचियों, शिशु के सौंदर्य और चंचलता के साथ ही मातृ हृदय के जो मर्मस्पर्शी चित्र सूर ने बाल-लीला वर्णन में दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है. हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- "उसमें मातृ हृदय का अभूतपूर्व चित्र उतरा है... सूरदास मातृ-हृदय का चित्र खींचने में अपना सानी नहीं रखते." **11**

किलकत कान्ह घुटरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कै आँगन, बिंब पकरिबै धावत।
कबहु निरखि हरी आपु छांह कौ, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हंसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।

सुर के वात्सल्य वर्णन में बाल सुलभ चेस्टाएं एवं बाल मनोविज्ञान के अपूर्व दुर्लभ चित्र मौजूद हैं:

जसोदा हरि पालनै झुलावै
हलरावै, दुलरावै मलहावै, जोई सोई कछु गावै
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै न आनि सुवावै
तू काहे नहिं बेगहिं आवै, तोकों कान्ह बुलावै
कब हुंक पलक हरि मूंदि लेत हैं, कब हूं अधर फरकावै

या फिर

मैया, कबही बढ़ेगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी

इसके अतिरिक्त वात्सल्य वर्णन में निष्कलुष भाव उभर आता है. शिशु को लेकर मातृ हृदय के स्वाभाविक बेचैनी का चित्र दृष्टव्य है:

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटरुवनि रेंगै, केबी घरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दांत दूध कै देखौ, कब तोतरैं मुख बचन झरैं।

सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का अत्यंत मनोहर चित्रण सूरसागर में किया है और सूर के पदों के आधार पर अनेक कुशल चित्रकारों ने चित्र निर्मित किए हैं. **12**

सूरदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है, उनके द्वारा नवीन प्रसंगों की उद्भावना. रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में इनकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि "प्रसंगोद्भावना करने वाली ऐसी प्रतिभा हम तुलसी में नहीं पाते. बाललीला और प्रेमलीला दोनों के अंतर्गत कुछ दूर तक चलने

वाले न जाने कितने छोटे छोटे मनोरंजक वृतों की कल्पना सूर ने की है. जीवन के एक क्षेत्र के भीतर कथावस्तु की यह रमणीय कल्पना ध्यान देने योग्य है." **13** बाल वर्णन में कुछ नई उदभावनाएं अत्यंत मनमोहक हैं. माखन खाते समय माखन भरे घट में अपना प्रतिबिंब देखकर यह समझना कि कोई और शिशु उनका माखन खा रहा है या फिर चांद को खिलौने के रूप में लेने की जिद, इसके उदाहरण हैं. वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन के पदों में सूर ने इस सोच को झुठला दिया है कि नारी ही नारी की पीड़ा का बखान कर सकती है. मातृ हृदय का विकल रूप तथा प्रेम रुप एवं प्रेम की पीर का जो बखान गोपियों की दशा के रूप में सूर ने किया है वह शायद ही औरों के काव्य में हो.

सूर का श्रृंगार वर्णन भी अत्यंत मनोहारी है. शुक्ल जी के अनुसार श्रृंगार का रसराजत्व अगर किसी ने दिखाया है तो सूर ने. संयोग के अनन्य चित्र तो है ही वियोग श्रृंगार के जो चित्र सूर ने खींचे हैं, वह अपूर्व हैं. वियोग की सभी अंतर्दशाओं का आख्यान सूरदास की महति उपलब्धि है. सूर का संयोग चित्रण जितना सुखद और उल्लासमय है, वियोग वर्णन उतना ही करुण, मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही. राधा-कृष्ण और गोपियों और कृष्ण का प्रेम नारी को उपभोग की वस्तु मानने वाली सामंती परंपरा का तिरस्कार भी है. यह प्रेम वासना विहीन है और भेदभाव रहित भी. कृष्ण का मथुरा-गमन प्रेम में वियोग का कारक है तो लोक कल्याण और दुष्ट दलन का उपक्रम भी. "जिस प्रकार रामचरित का गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्ण चरित्र का गान करने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदास अग्रगण्य हैं."**14**

सूरदास के काव्य में जितनी मधुरता और भावुकता है उतने ही वाग्विद्ग्धता भी है. भ्रमरगीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय है. "सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैद्ग्धपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है. ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता." **15** यहां कविता और शास्त्र एकाकार हो गए हैं.

ऊधौ अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहु पलक न लागी।
बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौ बिदमान।
अब धौं कहा कियौ चाहत हौ, छाड़ों निरगुन ज्ञान।

भ्रमरगीत में सगुण ने निर्गुण पर, सरसता ने शुष्कता पर, प्रेम ने दर्शन पर, भक्ति ने वैराग्य पर और संयोग ने वियोग पर विजय पाई है. सूर के भ्रमरगीत का अपना अलग वैभव, एक अपना लावण्य है. भ्रमरगीत में भ्रमर वृति या रस लोलुपता पर गहरा आघात है. भ्रमर वृति, उस समय के सामंती सोच का प्रतिरूप है जिसका निषेध कराते हुए इसे प्रेम में बाधक और नाशक वृति की तरह दिखाया गया है, इसके निषेध किया गया है. विलासिता से डूबे समाज में भोगवृति के ऊपर प्रेम के औदात्य की प्रतिष्ठा की जहां प्रेम में समानता और त्याग बड़े मूल्य के रूप में स्थापित हो जाते हैं. स्त्रियों की समानता एवं स्वतन्त्रता की स्थापना और स्त्री-पुरुष संबंधों में बराबरी की यह बेहतरीन मिसाल है.

विवशता - उधो मन नहीं हाथ हमारे
सरलता- निर्गुण कौन देस को बासी
व्यंग्य-उपालंभ- वह मथुरा काजर की कोठरी, जे आवै ते कारे

सूरदास की कविता के भाव पक्ष के साथ-साथ कला पक्ष की दृष्टि से भी जनपक्षधरता का नमूना है. सूर की काव्यभाषा जनसमान्य की अपनी भाषा है. चलती हुई ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप का उत्तम नमूना है सूरदास का कवि. सूरदास के सूरसागर की भाषा और उसकी काव्यांग इतना समृद्ध है कि यह सोचकर आश्चर्य होता है कि यह ब्रज की पहली साहित्यिक कृति है, और इतनी विशिष्ट भी. सूर का काव्य गीत संगीत का अद्भुत खजाना भी है. राग रागनीयों में बंधे हुए पद अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि करते हैं. प्रख्यात सौंदर्य शास्त्री वाल्टर पेटर की उक्ति स्मरण हो आती है कि सभी कलाएं अंततः संगीत स्थिति तक पहुंचना चाहती हैं. 'संगीत की स्थिति' कहने का अभिप्राय संभवतः यह है कि यहां वस्तु और रूप का अर्थ भी जैसे विलीन हो जाता है. इस रूप में सूर का काव्य जैसे अपने में संगीत हो, फिर संगीत के सक्रिय साहचर्य में तो वह और भी उदात्त हो उठता है.**16** इस काव्य की चातुरी प्रशंसनीय है. वे ब्रज के चित्रपट पर कृष्ण के महत्व को अंकित करने से पूर्व विनय के पदों में उसकी भूमिका तैयार करते हैं. बाल-लीला वर्णन में श्रीकृष्ण के भावी लीला का खाका पूरी तरह पूरी तैयारी के साथ बुनते हैं. इसके बाद धीरे-धीरे परिचय और साहचर्य प्रेम में परिणत होता है. इस पूरी योजना में ब्रज भाषा की सरलता और समृद्धि का उपयोग करते हैं. संगीत की विभिन्न राग-रागिनीयों के साथ लोक जीवन के मुहावरों और लोकोक्तियों के साथ ही काव्यांगों का सहज प्रयोग इनके काव्य को वह वैराट्य देता है जहां पहुंचकर सूर कृष्ण राज्य की कल्पना को साकार करते हैं. यह सबकुछ सामाजिकता के धरातल पर होता है, जनसमान्य से जुड़ कर होता है. अपने समय और समाज की चिंता, भविष्य के सकारात्मक आशाओं, उम्मीदों के साथ होता है. जहां प्रेम है, बराबरी हैं, जनसमान्य की चिंता और परवाह है. अपने काव्य के द्वारा सूर वह मानक स्थापित करते हैं जिसे पार करना या चुनौती देना किसी भी कवि के लिए दुष्कर है.

संदर्भ

1. जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान अथवा जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरी को भजे सो हरि का होई
2. मानुष प्रेम भयो बैकुंठि, नहिं तो काह छार एक मूठी
3. पृष्ठ-241, (मैनेजर पांडेय) मध्यकालीन साहित्य विमर्श- संपादक-सुधा सिंह, आनंद प्रकाशन कोलकाता संस्करण 2004
4. पृष्ठ 23, भक्ति आंदोलन और स्त्री विमर्श – मेधा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर प्राइवेट लिमिटेड अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्कारण 2014
5. पृष्ठ 40, (गोपेश्वर सिंह) मध्यकाल: एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक- धनंजय कुमार दुबे, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017
6. पृष्ठ 86, हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 29 वा संस्करण संवत 2051
7. पृष्ठ-111, भक्ति आंदोलन और काव्य – गोपेश्वर सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2017
8. पृष्ठ-246 , (मैनेजर पांडेय) मध्यकालीन साहित्य विमर्श- संपादक-सुधा सिंह, आनंद प्रकाशन कोलकाता संस्करण 2004

9. पृष्ठ-159, भक्ति-आंदोलन और भक्ति-काव्य – शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद द्वितीय संस्करण 2012
10. पृष्ठ 92, हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 29 वा संस्करण संवत 2051
11. पृष्ठ 92, सूर साहित्य – हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, आवृत्ति संस्करण 2003
12. पृष्ठ 234, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य – मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण 2003
13. पृष्ठ 94, हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 29 वा संस्करण संवत 2051
14. पृष्ठ 92, हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 29 वा संस्करण संवत 2051
15. पृष्ठ 94, हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 29 वा संस्करण संवत 2051
16. पृष्ठ 67, भक्ति काव्य यात्रा – रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2003